© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 02 | April – June 2016

निर्गुण सन्त काव्य में नारी

अनिता कादियान, हिन्दी, सहायक प्रोफेसरए राजीव गांधी महाविद्यालय, उचाना।

सम्पूर्ण निर्गुण सन्त काव्य पर दृष्टि डालते हैं तो नारी की निंदा अपवाद रूप से सामने आती है। वैसे किसी न किसी रूप में सभी संतों ने नारी निंदा के अभियान में अपना समुचित योगदान दिया परन्तु सन्त ि"ारोमणि सन्त कबीर का स्वर सबसे प्रखर प्रतीत होता है। नारी की भर्त्सना के लिए जितनी गालियों, जितने अन्य शब्दों का प्रयोग वे कर सकते थे उन्होंने निःसकोंच होकर किया। वैसे तो कबीर जिस कर्मकाण्ड को पाखण्ड और आडम्बर मानते थे उसकी भर्त्सना मुखरता व निर्ममता से करते थे। उनसे भिन्न दृष्टिकोण रखने वाला चाहे पंडित हो या काजी या अवधूत व सभी को एक वि"ोष दर्प के साथ फटकारते थे। दलील हो न हो किसी भी असत्य को जलील करने का भरपूर सामर्थ्य उनमें था। इन सब की भर्त्सना चुनौती के रूप में है तो नारी की भर्त्सना उनके काव्य में वर्जना के रूप में है। अपने अ"ारीरी ब्रह्म की साधना में पार्थिव जगत की कोई वस्तु सबसे बड़ी बाधा के रूप दिखाई देती थी तो वह थी नारी। इस बाधा को जहां तक वे माया के रूप में मानते थे वहां तक तो अन्य निर्गुण संतो ंके साथ उनका विचार साम्य दिखाई देता है। किन्तु उनके काव्य में नारी–निन्दा की असामान्य दृष्टि किसी असाधारण परिस्थिति की उपज प्रतीत होती है। संत रविदास, नामदेव, दादू, गुरुनानक यहां तक की सहजोबाई, दयाबाई, मीराबाई ने भी माया को स्त्री मानकर ही उसकी निंदा की है पर यह निंदा नारी की नहीं थी माया की ही थी, किंतु कबीर ने तो नारी को ही माया का रूप दे दिया हैं उनकी दृष्टि में नारी का रचनात्मक महत्त्व पूर्णतः तिरोहित हो गया। कहीं–कहीं तो व नारी के सांसारिक महत्त्व को ही नकार देते हैं। किसी भी समाजिक रूप में स्वीकार करना तो एक तरफ वे तो उसे तिरस्कारणीय और त्याज्य ही मानते हैं। यथा :–

नारी तो हमहूँ करी, जाना नहीं विचार।
जब जाना तब परहरि, नारी बड़ा विकार।।[1]

लगता है कबीर अपने व्यक्तित्व के केंचुल में इस तरह बन्द हो गए थे कि लोकधर्म के आचार की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता, अलौकिक शक्ति की साधना और मोक्ष ही जन्म और जीवन का अंतिम ध्येय था उनकी दृष्टि में, इसलिए नारी पत्नी, माता, बहन किसी भी रूप में स्वीकार्य नहीं है। सारे विकारों की जड़ वे नारी को ही मानते हैं।यहां तक कि अनेक देवताओं के पत्तन का कारण भी उन्हें नारी ही दिखाई देती है।

माया की निंदा कबीर, दादू, रविदास, नानक यहां तक की मीरा भी सभी, समान रूप से करते हैं। समूची संत वाणी को देखते हैं तो यह धारणा बनती है कि वे सभी भौतिक वस्तुएं कचन–कामिनी पार्थिव

जगत की सभी विव"ाताएं सांसारिक जीवन के तमाम आकर्षण जो आदमी को जंगम जगत के क्रिया–कलापों की ओर खींचते हैं माया के रूप में जाने जाते हैं। संत रविदास को यदि कबीर से पूर्व का कवि मान लते हैं तो मानना पड़ता है कि संत रविदास कबीर से माया के प्रति अधिक साफ दृष्टि रखते थे। माया की निंदा उन्होंने बड़े सहज भाव से की, उनमें किसी प्रकार का पूर्वाग्रह दिखाई नहीं देता, उनकी निंदा में विचार की स्थिरता है भाव की उग्रता नहीं। अपनी इस धारणा की पुष्टि के लिए रविदास माया मृग के उस प्रसंग का उदाहरण देते हैं जिसके कारण भगवान राम को अनेक कष्ट सहने पड़े। वे इसी प्रकार के कुछ उदाहरण दे कर नारी को भी माया ही मानते हैं, जहां संबंधी जनों के मोह को भी माया ही मानते हैं, वहां ये संबंध ई"वरभक्ति में बाधा बनते हैं इन्हें वे त्याज्य ही मानते हैं। नारी के त्याग का कोई वि"ोष फतवा वे अपने ि"ाष्यों को नहीं देते। संत दादू भी माया को कुछ इसी दृष्टिकोण से देखते हैं। नारी के प्रति उपेक्षा का कोई वि"ोष आग्रह वे भी नहीं करते और न ही उसे प्रभु भक्ति में एकमात्र बाधा के रूप में मानते हैं। उनमें पुरूष का दंभ भी नहीं है जो कबीर में है। वे मानते हैं कि भक्त के लिए काम रूपा होकर भगवद् भजन में जितनी स्त्री बाधक है कामी पुरूष भी नारी की भगवदसाधना में उतना ही बाधक हैं। दादू कहते हैं :–

नारी पीवै पुरूष कूं, पुरूष कुं खाई।
दादू गुरु के ज्ञान बिन, दोन्यू गये बिलाई।।[2]

संत दादू ने नारी की सामाजिकता को स्वीकार किया है। नारी की निंदा करते हुए तो केवल उस रूप में जहां नारी अपना सामाजिक और घरेलू रूप गवां बैठती है अपनी मर्यादा को तिलांजलि द देती है। ऐसी नारी प्रभु भक्ति क्या सामाजिक जीवन में भी बाधक होती है।

इस प्रकार रविदास, दादू और नामदेव भक्ति के साथ सामाजिक जीवन के आधारभूत मूल्यों से भी परिचित है। नारी घृणा नारी का त्याग और उनकी भर्त्सना उनकी दृष्टि का उद्दे"य नही बल्कि सन्मार्ग की वह सीमा है जहां नारी के द्वारा उसका उल्लंघन होता है वही नारी के लिए भी वही व्यवस्था–विधान है जो पुरूष के लिए है, इसलिए उनका माया–निषेध अतिरकों से बचा हुआ है।

महिला निर्गुण संतों ने भगवद् भजन में बाधक तत्वों को माया माना उसे सास ननद और समाज के रूप में पाया है। इन नामों को प्रतिक रूप में संत भी प्रयोग करते है। निर्गुण संतों में सहजोबाई और दयाबाई का नाम वि"ोष उल्लेखनीय है। पर सहजोबाई ज्ञान और सयंम में वि"वास रखती है, वे पुरूष व समाज को दोष न देकर अंतर्मुखी साधना का संदे"ा देती है, काम को साधना आव"यक है, सहजोबाई कहती है :–

साधु सो जो काया साधे। तजि आलस ओर वाद–विवादे।

सारां"ा यह है कि भक्ति आंदोलन विषम एवं विकट भारतीय समाज के कल्याण हेतु शुरू हुआ था। सामाजिक विषमताओं और धार्मिक अन्तर्विरोधों में से संतों ने भक्ति आंदोलन के लिए रास्ता बनाया था। नारी निवत्ति द"ान की सबसे बड़ी बाधा थी। निर्गुण संत काव्य का उदभव काल बाहुबल का काल था। पुरूष वर्ग को पराजय भावना का प्रतिकार चाहिए था, हारे हुए दंभ की क्षति भावना की पूर्ति होनी चाहिए थी। संतों ने भी वही मार्ग अपना लिया था। उन्होंने भी पुरूष की दुर्बलताओं का मूल कारण नारी को मानकर नारी निंदा का अस्त्र प्रयोग करना शुरू कर दिया। निर्गुण संतो ंके लिए भी यौन का दमन करना उतना आसान नहीं था जितनी मोक्ष आर शा"वत कल्पना आसान थी। एक पक्ष मौन था किंतु निष्क्रिय नही था। दूसरा सक्रिय भी, मुखर भी, वाचाल भी, उदंड भी। अतः शमन और दमन की दो विरोधी स्थितियों के बीच निर्गुण संतों का काव्य भटक रहा था। परन्तु नारी एक लौह शृंखला की तरह इन दोनों अतियों के छोरों तक फैली थी जिसकों लांघने या तोड़ने के लिए संत कवियों को भी कठीन प्रयास करने पड़े, विकट संघर्ष करना पड़ रहा था। उसी सघर्ष के प्रतिरूप उनकी वाणी में नारी निंदा के रूप में प्रकट हुए।

संदर्भ सूची

1. कबीर ग्रंथावली, प्रका"ाक केंद्र लखनऊ, पृष्ठ 200
2. गुरु ग्रंथ साहिब, पृष्ठ 1165
3. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियां सावित्रि सिन्हा पृष्ठ 57
4. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियां सावित्रि सिन्हा पृष्ठ 126
5. मीरा का काव्य, वि"वनाथ त्रिपाठी पृष्ठ 71
6. गुरु ग्रंथ विचार को"ा, सम्पादक प्यारा सिंह पदम पृष्ठ 69